इकाई 14 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क)–भाग 1

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क) – श्लोक 1-11

14.3 सारांश

14.4 शब्दावली

14.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के चतुर्थ अंक की कथा से परिचित होंगे।
- महाकवि कालिदास की भाषा-शैली से परिचित होंगे।
- अनसूया एवं प्रियंवदा का शकुन्तला के प्रति कितना अधिक स्नेह था, यह जान सकेंगे।
- महाकवि कालिदास के व्यावहारिक ज्ञान से परिचित होंगे।

14.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! 12वीं एवं 13वीं इकाई में आपने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक के विषय में अध्ययन किया। इस नाटक में सात अंक हैं जिसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, विवाह, विरह और पुनर्मिलन का वर्णन किया गया है। आपके पाठ्यक्रम में इस नाटक का चतुर्थ अंक रखा गया है। आप जानते हैं कि इस नाटक का चतुर्थ अंक अत्यन्त रमणीय है– ''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला .....।।'' इस इकाई में आप पढेंगे कि शकुन्तला की दोनों सखियाँ अनसूया और प्रियंवदा उससे कितना अधिक स्नेह करती हैं। दोनों दुर्वासा ऋषि के शाप का वृत्तान्त शकुन्तला से इसलिए नहीं कहतीं कि वह जब यह जानेगी तो अत्यन्त दुःखी होगी। दोनों शकुन्तला की विदायी के लिए उसको भली-भाँति अलंकृत करती हैं। उसकी विदायी के अवसर पर ऋषि कण्व भी अत्यन्त दुःखी हैं। पशु-पक्षी भी अपनी मधुर ध्वनि के माध्यम से शकुन्तला को विदायी की अनुमति प्रदान करते हैं। इस इकाई में आप चतुर्थ अंक के संवादों और श्लोक सं. 1-11 तक का अध्ययन करेंगे।

14.2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् (चतुर्थ अङ्क) – श्लोक 1-11

मूलपाठ –

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।)

अनसूया– हला प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृतं मे हृदयम्, तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्। (हला पिअंवदे, जइ वि गन्धव्वेण विहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउन्दला अणुरूवभत्तुगामिणी संवुत्तेति मे हिअअं। तह वि एतिअं चिन्तणिज्जं।)

प्रियंवदा – कथमिव? (कहं विअ।)

अनसूया – अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्यर्षिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति। (अज्ज सो राएसी इट्ठिं परिसमाविअ इसीहिं विसज्जिओ अत्तणो णअरं पविसिअ अन्तेउरसमागदो इदोगदं वुत्तन्तं सुमरदि वा ण वेति।)

प्रियंवदा – विस्त्रब्धा भव। न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति। तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति। (वीसद्धा होहि। ण तादिसा आकिदिविसेसा गुणविरोहिणो होन्ति। तादो दाणिं इमं वुत्तन्तं सुणिअ अ आणे किं पडिवज्जिस्सदि त्ति।)

अनसूया – **यथाऽहं पश्यामि, तथा तस्यानुमतं भवेत्।** (जह अहं देक्खामि, तह तस्स अणुमदं भवे।)

प्रियंवदा – **कथमिव?** (कहं विअ।)

अनुवाद – (तदनन्तर फूलों को चुनने का अभिनय करती हुई दो सखियाँ प्रवेश करती हैं।)

अनसूया – सखी प्रियंवदा, यद्यपि गान्धर्व विधि से शकुन्तला का विवाह होकर कल्याण हो गया है तथा उसने अपने अनुकूल पति को प्राप्त कर लिया है, इसलिए मेरा हृदय प्रसन्न है, फिर भी यह बात तो सोचने योग्य है।

प्रियंवदा – वह क्या?

अनसूया – अब वे राजर्षि यज्ञ को समाप्त करके, ऋषियों से विदा लेकर अपने नगर में प्रवेश करके अन्तःपुर में पहुँच गए हैं। अब वह यहाँ की बातों को स्मरण करेंगे या नहीं।

प्रियंवदा – निश्चिन्त रहो। उस प्रकार की विशेष आकृतियाँ गुणों की विरोधी नहीं होतीं किन्तु पिता कण्व इस वृतान्त को सुनकर क्या सोचेंगे?

अनसूया – जैसा मैं समझती हूँ, यह विवाह उन्हें स्वीकार होगा।

प्रियंवदा – कैसे?

व्याख्या –

अनसूया और प्रियंवदा के संवाद से सूचित होता है कि दुष्यन्त एवं शकुन्तला का विवाह सम्पन्न हो गया तथा दोनों ने कुछ समय पति-पत्नी के रूप में व्यतीत किया। यज्ञ कार्य के समाप्त हो जाने पर दुष्यन्त अपनी राजधानी को लौट गए। काफी समय व्यतीत हो जाने पर भी उन्होंने शकुन्तला को बुलाने के लिए कोई सन्देश नहीं भेजा।

पिता कण्व भी सोमतीर्थ से नहीं आये। अनसूया को चिन्ता है कि दुष्यन्त को यहाँ का वृत्तान्त याद रहेगा या नहीं। प्रियंवदा को चिन्ता है कि पिता कण्व इस वृत्तान्त को सुनकर न जाने क्या सोचेंगे? प्रियंवदा कहती है कि दुष्यन्त की जैसी सौम्य एवं तेजस्विनी आकृति है, उसी के अनुसार उसके आन्तरिक गुण होने चाहिए। दुष्यन्त शकुन्तला को धोखा देगा, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए।

शब्दार्थ – कुसुमावचयम् = फूलों को चुनना, विस्त्रब्धा भव = चिन्ता न करो, गुणविरोधिनः = गुणों से विरोध करने वाले, गान्धर्वेण = गान्धर्व विवाह की विधि से, निर्वृत्तम् = सन्तुष्ट।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवचय = अव+चि+घञ्, निर्वृत्तकल्याणा = निर्वृत्तं सम्पन्नं कल्याणं विवाहमंगलं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), निवृत्त = निर्+वृ+क्त, इष्टि = यज्+क्तिन्, आकृतिविशेषा = आकृतीनां विशेषाः (तत्पुरुष समास)।

मूलपाठ –

अनसूया – गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति, नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरुजनः। (गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जे त्ति अअं दाव पढमो संकप्पो। तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो।)

प्रियंवदा – (पुष्पभाजनं विलोक्य) सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि। (सहि, अवइदाइं बलिकम्मपज्जत्ताइं कुसुमाइं।)

अनसूया – ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया। (णं सहीए सउन्दलाए सोहग्गदेवआ अच्चणीआ।)

प्रियंवदा – युज्यते। (जुज्जदि।)

(इति तदेव कर्माभिनयतः)

(नेपथ्ये)

अयमहं भोः।

अनसूया – (कर्णं दत्त्वा) सखि, अतिथीनामिव निवेदितम्। (सहि, अदिधीणं विअ णिवेदिदं।)

प्रियंवदा – ननूटजसन्निहिता शकुन्तला। (णं उडजसण्णिहिदा सउन्दला।)

अनसूया – अद्य पुनर्हृदयेनासन्निहिता। अलमेतावद्भिः कुसुमैः। (अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा। अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं।)

(इति प्रस्थिते)

(नेपथ्ये)

आः, अतिथिपरिभाविनि,

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।1।।

अन्वयः – अनन्यमानसा यं विचिन्तयन्ती उपस्थितं तपोधनं वेत्सि न माम् उपस्थितम्। स्मरिष्यति त्वां न स बोधितः अपि सन् त्वां न स्मरिष्यति।

अनुवाद–

अनसूया – गुणशाली पुरुष को कन्या देना है, यह उनका प्रथम संकल्प था। उस संकल्प को यदि भाग्य ही सम्पादित कर देता है तो बिना प्रयास के ही गुरुजन कृतार्थ हो गए।

प्रियंवदा – (फूलों के पात्र को देखकर) सखि, पूजन कार्य के लिए पर्याप्त फूल चुन लिए हैं।

अनसूया – किन्तु सखी शकुन्तला के सौभाग्य देवता का पूजन भी तो करना है।

प्रियंवदा – ठीक है।

(फिर उसी कार्य का अभिनय करती है)

(नेपथ्य में)

हे! यह मैं आया हूँ। यहाँ कौन है?

अनसूया – (कान देकर) सखि, जैसे किसी अतिथि ने पुकारा है।

प्रियंवदा – कुटी में शकुन्तला उपस्थित ही है। (मन में) पुनः आज हृदय से उपस्थित नहीं है।

अनसूया – अच्छा, इतने फूल पर्याप्त हैं। (यह कहकर दोनों चल देती हैं।) अहा, अतिथि का तिरस्कार करने वाली!

अनन्यमन से जिसका ध्यान करती हुई तू अतिथि रूप में उपस्थित मुझ तपस्वी को नहीं देख रही है, वह व्यक्ति स्मरण कराया जाता हुआ भी तुमको उसी प्रकार स्मरण नहीं करेगा, जैसे कि पागल व्यक्ति पहले कही हुई बात को समरण नहीं करता।।1।।

व्याख्या–

प्रियंवदा चिन्ता करती है कि पता नहीं पिता कण्व इस विवाह के विषय में क्या सोचेंगे? अनसूया कहती है कि मेरी समझ से पिता को यह विवाह स्वीकार होगा क्योंकि गुणवान् व्यक्ति से शकुन्तला का विवाह करना उनका संकल्प था। जिसे शकुन्तला ने अपने भाग्य से प्राप्त कर लिया है। शकुन्तला तो दुष्यन्त के ध्यान में निमग्न है और उसको बाह्य संसार का बोध नहीं है परन्तु उसकी दोनों सखियाँ उसके सौभाग्य के लिए प्रतिदिन पूजा करती हैं, जिससे कि उसका अनिष्ट न हो।

शब्दार्थ – प्रथमः संकल्पः = मुख्य निश्चय या विचार, अनायासेन = बिना किसी प्रयास के, सौभाग्यदेवता = ईष्ट देव, युज्यते = तुम्हारी बात ठीक है, निवेदितम् = निवेदन, प्रमत्तः = उन्मत्त।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – निवेदितम् = नि+विद्+क्त, अनन्यमानसा = अनन्यं मानसं यस्याः सा, प्रमत्तः = प्र+मद्+क्त, विचिन्तयन्ती = वि+चिन्त+शतृ+ङीप्।

प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा वंशस्थ छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकर है – **'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'** अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण हो, वहाँ वंशस्थ छन्द होता है।

मूलपाठ –

प्रियंवदा – हा धिक्, हा धिक्। अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। (हद्धी, हद्धी। अप्पिअं एव्व संवुत्तं। कस्सिं पि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउन्दला। ण हु जस्सिं कस्सिं पि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी। तह सविअ वेअबलुब्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो।)

अनसूया – कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति। गच्छ। पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि। (को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि। गच्छ। पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उवकप्पेमि।)

प्रियंवदा – तथा। (तह।) **(इति निष्क्रान्ता।)**

अनसूया – (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अहो, आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्। (अम्मो, आवेअक्खलिदाए गईए पब्भट्टं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं।) **(इति पुष्पोच्चयं रूपयति।)**

(प्रविश्य)

प्रियंवदा – सखि, प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति? किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः। (सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो।)

अनसूया – (सस्मितम्) तस्मिन् बह्वेतदपि। कथय। (तस्सिं बहु एदं पि। कहेहि।)

प्रियवंदा – यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मषर्यितव्य इति। (जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए। भअवं, पढम त्ति पेक्खिअ अविण्णादतवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति।)

अनसूया– ततस्ततः। (तदो तदो।)

अनुवाद–

प्रियंवदा – हाय! हाय! अनर्थ हो गया। किसी आदरणीय व्यक्ति के प्रति शून्य हृदय शकुन्तला ने अपराध कर दिया। (सामने देखकर) और किसी साधारण व्यक्ति के प्रति नहीं। यह सरलता से क्रुद्ध हो जाने वाले दुर्वासा ऋषि हैं। इस प्रकार शाप देकर वेग के बल से उछलती हुई और न रोकी जा सकने वाली गति से लौट रहे हैं।

अनसूया – अग्नि के अतिरिक्त और कौन वस्तु जलाने में समर्थ होगी? जा और पैरों में प्रणाम करके इनको लौटा ला, तब तक मैं पूजा का सामान तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा – अच्छा। (यह कहकर निकल गयी)

अनसूया – (एक पग के बाद फिसलने का अभिनय करके) ओह, घबराहट से फिसलती हुई गति वाले मेरे हाथ से पुष्पों का पात्र गिर गया। (यह कहकर फूलों को उठाने का अभिनय करती है।)

(प्रवेश करके)

प्रियंवदा – सखी! स्वभाव से टेढ़े वह दुर्वासा किसकी विनती स्वीकार करते हैं? तब भी मैंने उनको कुछ दयालु कर लिया।

अनसूया – (मुस्कुराकर) उनके लिए यह भी बहुत है। बताओ।

प्रियंवदा – जब उन्होंने लौटना नहीं चाहा तो मैंने निवेदन किया– भगवन्!

आपके तप के प्रभाव को न जानने वाली आपकी पुत्री का यह पहला अपराध है, यह समझकर आप इस एक अपराध को क्षमा कर दीजिए।

अनसूया – उसके पश्चात्।

व्याख्या– दुर्वासा ऋषि अतिथि के रूप में आश्रम के द्वार पर उपस्थित हुए और उन्होंने शकुन्तला को पुकारा। परन्तु दुष्यन्त के ध्यान में मग्न शकुन्तला ने ऋषि की पुकार को नहीं सुना। स्वभाव से क्रोधी होने के कारण वह शकुन्तला को शाप देकर चले गए। भारतीय साहित्य में दुर्वासा ऋषि क्रुद्ध होने के लिए प्रसिद्ध हैं। थोड़े से कारण से भी वे क्रुद्ध हो जाते हैं। दुर्वासा को देखकर सखियाँ घबरा जाती हैं। दुर्वासा ऋषि अग्नि के सदृश जलाने वाले क्रोधी स्वभाव के हैं। वे किसी का अनुनय कठिनाई से ही स्वीकार करते थे। फिर भी प्रियंवदा उनसे अनुनय-विनय करती है तथा शकुन्तला के अपराध को क्षमा करने हेतु विनय करती है।

शब्दार्थ – अप्रियमेव = अशुभ, शून्यहृदया = अन्यमनस्क, अर्घोदकम् = अर्घ और जल, अग्रहस्तात् = हाथ से, प्रकृति वक्रः = स्वभाव से कुटिल, सानुक्रोशः = दया से युक्त।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – पूजार्ह = पूजा+अर्ह्+अच्, अपराद्धा = अप+राध्+क्त+टाप्, वेगबलोत्फुल्लया = वेगस्य बलं तेन उत्फुल्ला (तत्पुरुष समास), अर्घोदकम् = अर्घश्च उदकं च तयोः समाहारः (द्वन्द्व समास), अग्रहस्तात् = अग्रश्चासौ हस्तश्च अग्रहस्तः (कर्मधारय समास), प्रकृतिवक्रः = प्रकृत्या वक्रः (तत्पुरुष समास), अनुक्रोशः = अनु+क्रुश्+घञ्।

मूलपाठ –

प्रियंवदा – ततो न मे वचनमन्यथाभवितुमर्हति, किं त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः। (तदो ण मे वअणं अण्णहाभविदुं अरिहदि, किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मन्तअन्तो एव्व अन्तरिहिदो।)

अनसूया – शक्यमिदानीमाश्वासितुम्। अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं पिनद्धम्। तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति। (सक्कं दाणिं अस्ससिदुं। अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अंगुलीअअं सुमरणीयं त्ति सअं पिणद्धं। तस्सिं साहीणोवाआ सउन्दला भविस्सदि।)

प्रियंवदा – सखि, एहि। देवकार्यं तावद् निर्वर्तयावः। (सहि, एहि। देवकज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह।)

(इति परिक्रामतः।)

प्रियंवदा – (विलोक्य) अनसूये, पश्य तावत्। वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति। किं पुनरागन्तुकम्। (अणसूए, पेक्ख दाव। वामहत्थोवहिदवअणा आलिहिदा विअ पिअसही। भत्तुगदाए चिन्ताए अत्ताणं पि ण एसा विभावेदि। किं उण आअन्तुअं।)

अनसूया – प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षितव्या खलु प्रकृतिपेलवा प्रियसखी। (पिअंवदे, दुवेणं एव्व णो मुहे एसो वुत्तन्तो चिट्ठदु। रक्खिदव्वा क्खु पकिदिपेलवा पिअसही।)

प्रियंवदा – को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति? (को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि।)

(इत्युभे निष्क्रान्ते)

विष्कम्भकः।

अनुवाद–

प्रियंवदा – तो मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता किन्तु पहचान का आभूषण दिखाने से शाप समाप्त हो जाएगा, यह कहकर स्वयं अन्तर्धान हो गए।

अनसूया – अब आश्वासन रखा जा सकता है। प्रस्थान करते हुए उस राजर्षि ने अपने नाम से अंकित अंगूठी शकुन्तला की अंगुली में यह कहकर पहना दी थी कि इसे स्मरण रखना। उस अंगूठी के द्वारा इस शाप का उपाय शकुन्तला के अधीन रहेगा।

प्रियंवदा – सखि, आओ। देवता की पूजा के कार्य को निबटा लें। (यह कहकर घूमती हैं।)

प्रियंवदा – (देखकर) अनसूये, देखो। बांयें हाथ पर मुख को रखे हुए प्रिय सखी चित्रलिखित-सी प्रतीत होती है। पति के ध्यान में लगी हुई यह स्वयं को भी नहीं पहचानती, तो फिर अतिथि का तो कहना ही क्या?

अनसूया – प्रियंवदे, निश्चय ही यह वृत्तान्त हम दोनों के मुख में रहे। स्वभाव से कोमल प्रिय सखी की निश्चय से रक्षा करनी चाहिए।

प्रियंवदा – कौन व्यक्ति नवमालिका को गरम जल से सींचता है?

(यह कहकर दोनों निकल गयीं)

विष्कम्भक समाप्त।

व्याख्या–

दुर्वासा ऋषि शाप के प्रभाव को कम करने का उपाय बताते हैं कि कोई अभिज्ञान चिन्ह दिखाने से शकुन्तला को दुष्यन्त पहचानने में सक्षम होगा। दुर्वासा ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गए। कहने का आशय यह है कि वे योग-शक्ति से अदृश्य हो गए। अनसूया प्रियंवदा से यह वृत्तान्त गोपनीय रखने तथा शकुन्तला को न बताने के लिए कहती है इस पर प्रियंवदा कहती है कि दुर्वासा के शाप को बता कर मैं शकुन्तला को पीड़ित नहीं करूँगी जिस प्रकार नवमालिका को गरम जल से सींचने पर वह मुरझा जाती है, उसी प्रकार शकुन्तला को यदि इस शाप का वृत्तान्त विदित हो गया तो वह

भी अत्यधिक पीड़ित होगी। शकुन्तला नवमालिका के पुष्प के समान है तथा दुर्वासा का शाप गरम जल के समान जला देने वाला है।

शब्दार्थ – अन्तर्हितः = अन्तर्धान हो गए, संप्रस्थितेन = प्रस्थान करते समय, स्मरणीयमिति = स्मृतिचिन्ह के रूप में, पिनद्धम् = पहनाया, प्रकृतिपेलवा = स्वभाव से कोमल।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अन्तर्हितः = अन्तर्+धा+क्त, संप्रस्थितेन = सम्+प्र+स्था+क्त, पिनद्धम् = अपि+नह्+क्त, वामहस्तोपहितवदना = वामहस्ते उपहितं वदनं यस्याः सा (बहुब्रीहि समास)।

मूलपाठ –

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः)

शिष्यः – वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्त, प्रभातम्। तथाहि–

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना–
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।2।।

अन्वयः – एकतः ओषधीनां पतिः अस्तशिखरं याति, एकतः अरुणपुरःसरः अर्कः आविष्कृतः, लोकः तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां, आत्मदशान्तरेषु नियम्यत इव।

शिष्य – (तदनन्तर सोकर उठे हुए कण्व के शिष्य का प्रवेश) प्रवास से लौटे हुए आदरणीय काश्यप ने मुझको समय देखने के लिए आदेश दिया है। प्रकाश निकल आया है। तो देखता हूँ कि रात कितनी बची है? (घूमकर और देखकर) अरे, प्रातःकाल हो गया है। क्योंकि –

एक ओर औषधियों का स्वामी चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है, दूसरी ओर अरुण को आगे किए हुए सूर्य उदय हो रहा है। यह संसार दो तेजों के एक साथ अस्त और उदय के द्वारा मानो अपने दशा-विशेषों में नियन्त्रित हो रहा है।।2।।

व्याख्या– प्रस्तुत पद्य द्वारा कवि यह अभिव्यक्त करना चाहता है कि प्रातःकाल होने पर एक ओर तो चन्द्रमा अस्त हो रहा है और दूसरी ओर सूर्य उदय हो रहा है। ये दोनों घटनाएँ एक साथ हो रहीं हैं। जब इतने तेजस्वी पदार्थों में भी अवनति एवं उन्नति का स्वाभाविक चक्र चलता रहता है, तब संसार में विभिन्न व्यक्तियों में सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि की विभिन्न अवस्थाएँ आती रहती हैं। मनुष्य कभी गिरता है, कभी उठता है, कभी वह दुःख पाता है, कभी वह सुख पाता है, कभी उसकी अवनति होती है और कभी उन्नति। इस श्लोक से यह अर्थ भी अभिव्यंजित होता है कि शकुन्तला पर विपत्ति आयेगी, परन्तु कुछ समय बाद यह विपत्ति दूर होकर वह उन्नत अवस्था को भी प्राप्त करेगी।।2।।

शब्दार्थ – वेला = समय, उपवावृत्तेन = लौटे हुए, अस्तशिखरम् = अस्त हो रहा है, अर्क = सूर्य, लोक = संसार।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – ओषधि = ओष+धा+कि, अरुणपुरःसरः = अरुणः पुरः सरः यस्य सः (बहुव्रीहि समास), आत्मदशान्तरेषु = आत्मनः दशानाम् अन्तराणि (तत्पुरुष समास), शिष्यः = शास्+क्यप्, प्रभात = प्र+भा+क्त।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, तुल्ययोगिता, यथासंख्य, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है **'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।'** अर्थात् जिस छन्द में एक तगण, एक भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण हों, वहाँ वसन्ततिलका छन्द होता है। ।।2।।

मूलपाठ –

अपि च –

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि।।3।।

अन्वयः – शशिनि अन्तर्हिते सा एव कुमुद्वती संस्मरणीशोभा मे दृष्टिं न नन्दयति। नूनम् इष्टप्रवासजनितानि अबलाजनस्य दुःखानि नूनम् अतिमात्रं सुदुःसहानि।

अनुवाद– और भी–

चन्द्रमा के छिप जाने पर वही कुमुदिनी स्मरणीय शोभावाली होने से मेरी दृष्टि को आनन्दित नहीं करती है। अबलाओं के प्रिय प्रवास से उत्पन्न हुए दुःख निश्चय से अत्यधिक दुःसह होते हैं।।3।।

व्याख्या– कवि प्रसिद्धि है कि चन्द्रमा के उदय होने पर कुमुद व सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते हैं तथा इनके अस्त होने पर ये बन्द हो जाते हैं। इस श्लोक से दुष्यन्त और शकुन्तला से सम्बन्धित घटनाओं की भी अभिव्यंजना होती है। चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्त के चले जाने पर और शकुन्तला का समाचार न लेने से उसकी अवस्था सोचनीय हो गयी है।

शब्दार्थ – अन्तर्हिते = छिपने पर, कुमुद्वती = कुमुदिनी, अबला = स्त्री, नूनम् = अवश्य ही, न नन्दयति = आह्लादित नहीं करती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संस्मरणीयशोभा = संस्मरणीय शोभा यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), अतिमात्रसुदुःसहानि = अतिमात्रं सुदुःसहानि (कर्मधारय समास), सुदुःसह = सु+दुः+सह्+खल्, संस्मरणीय = सम्+स्मृ+अनीयर्, इष्ट = इष्+क्त।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है। ।।3।।

मूलपाठ –

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

अनसूया – यद्यपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमाचरितम्। (जइ वि णाम विसअपरम्मुहस्स जणस्स एदं ण विदिअं तह वि तेण रण्णा सउन्दलाए अणज्जं आअरिदं।)

शिष्यः – यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि।

(इति निष्क्रान्तः)

अनसूया – प्रतिबुद्धाऽपि किं करिष्यामि। न मे उचितेष्वपि निजकरणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानीं सकामो भवतु, येनासत्यसन्धे जने शुद्धहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः शाप एष विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दुःखशीले तपस्विजने कोऽभ्यर्थ्यताम्। ननु सखीगामी दोष इति व्यवसिताऽपि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थंगतेऽस्माभिः किं करणीयम्। (पडिबुद्धा वि किं कविस्सं। ण मे उइदेसु वि णिअकरणिज्जेसु हत्थपाआ पसरन्ति। कामो दाणिं सकामो होदु, जेण असच्चसंधे जणे सुद्धहिअआ सही पदं कारिदा। अहवा दुव्वाससोसावो एसो विआरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारसाणि मन्तिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं पि ण विसज्जेदि। ता अदो अहिण्णाणं अङ्गुलीअअं तस्स विसज्जेम। दुक्खसीले तवस्सिजणे को अब्भत्थीअदु। णं सहीगामी दोसो त्ति व्ववसिदा वि ण पारेमि पवासपडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्सन्तपरिणीदं आवण्णसत्तं सउन्दलं णिवेदिदुं। इत्थंगदे अम्हेहिं किं करणिज्जं।)

अनुवाद–

(पर्दा हटाकर प्रविष्ट होकर)

अनसूया – सांसारिक विषय-भोगों से विमुख व्यक्ति को ये सब बातें यद्यपि विदित नहीं हैं तथापि उस राजा ने शकुन्तला के प्रति अनार्य आचरण किया है।

शिष्य – तो हवन करने का समय उपस्थित हो गया है। यह बात गुरु से निवेदन करूँ। (यह कहकर निकल जाता है।)

अनसूया – जागकर भी क्या करूँगी? अभ्यस्त दैनिक कार्यों में भी मेरे हाथ-पैर नहीं चल रहे हैं। कामदेव की इच्छा पूर्ण हो। जिसने असत्य प्रतिज्ञा वाले व्यक्ति के प्रति शुद्धहृदया शकुन्तला का प्रेम कराया है अथवा दुर्वासा का शाप ही यह विकार उत्पन्न कर रहा है। नहीं तो कैसे वह राजर्षि इस प्रकार की मीठी बातें करके इतने दिनों तक एक पत्र भी न भेजता। अतः यहाँ से वह पहचान की अँगूठी उसके पास भेजते हैं। कष्ट सहन करने वाले तपस्वियों में से किससे प्रार्थना करें? हमारी सखी पर दोष आयेगा। इसलिए मैं निश्चय करने पर भी प्रवास से लौटे हुए पिता काश्यप से यह निवेदन करने में समर्थ नहीं हो रही हूँ कि शकुन्तला का दुष्यन्त से विवाह हो गया है और वह गर्भवती है। इस प्रकार की अवस्था होने पर हमें क्या करना चाहिए?

शब्दार्थ – गुरवे = गुरु से, विदितं = जानना, लेखमात्रमपि = पत्रमात्र भी, विसृजति = भेजना, दु:खशीले = दु:ख सहन करने वाले, परिणीताम् = विवाहिता, आपन्नसत्त्वाम् = गर्भिणी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अपटीक्षेपः = पट्याः क्षेपः पटीक्षेपः, न पटीक्षेपः इति अपटीक्षेपः (नञ् तत्पुरुष समास), प्रतिबुद्धा = प्रति+बुध्+क्त+टाप्, आपन्नसत्त्वाम् = सत्त्वम् आपन्ना (तत्पुरुष समास)।

मूलपाठ –

(प्रविश्य)

प्रियंवदा – (सहर्षम्) सखि, त्वरस्व त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्। (सहि, तुवर तुवर सउन्दलाए पत्थानकोदुअं णिव्वत्तिदुं।)

अनसूया – सखि, कथमेतत्? (सहि, कहं एदं।)

प्रियंवदा – शृणु। इदानीं सुखशयितप्रच्छिका शकुन्तलासकाशं गताऽस्मि। (सुणाहि। दाणि सुहसइदपुच्छिआ सउन्दलासआसं गदम्हि।)

अनसूया – ततस्ततः। (तदो तदो।)

प्रियंवदा – तावदेनां लज्जावनतमुखीं परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम्। दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि पावक एवाहुतिः पतिता। वत्से, सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीयासि संवृत्ता। अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति। (दाव एणं लज्जावणदमुहिं परिस्सजिअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणन्दिदं। दिट्ठिआ धूमाउलिददिट्ठिणो वि जअमाणस्स पावए एव्व आहुदी पडिदा। वच्छे, सुसिस्सपरिदिण्णा विज्जा विअ असोअणिज्जासि संवुत्ता। अज्ज एव्व इसिरक्खिदं तुमं भत्तुणो सआसं विसज्जेमि त्ति।)

अनसूया – अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः? (अह केण सूइदो तादकस्सवस्स वुत्तन्तो।)

प्रियंवदा – अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या। (अग्गिसरणं पविट्ठस्स सरीरं विणा छन्दोमईआ वाणिआए।)

अनुवाद– (प्रवेश करके)

प्रियंवदा – (प्रसन्नता से) सखि, शकुन्तला की विदाई के समय किये जाने वाले मंगल कार्यों के लिए शीघ्रता करो।

अनसूया – सखि, यह कैसे हुआ?

प्रियंवदा – सुनो। तुम सुखपूर्वक सोई थी, यह पूछने के लिए मैं अभी शकुन्तला के पास गयी थी। तब लज्जा से झुके हुए मुख वाली इस शकुन्तला का आलिंगन करके पिता काश्यप ने अभिनन्दन किया। धुएँ से व्याकुल दृष्टि वाले यजमान की आहुति भाग्य से अग्नि में ही गिरी है। पुत्रि! शिष्य को दी गयी विद्या के समान तुम अशोचनीय हो गयी हो। ऋषियों से रक्षा की गयी तुमको मैं आज पति के पास विदा करता हूँ।

अनसूया – और तात काश्यप को यह सूचना किसने दी?

प्रियंवदा – यज्ञशाला में प्रविष्ट हुए उनके शरीर रहित छन्दोमय वाणी ने।

शब्दार्थ – प्रस्थानकौतुक = प्रस्थान के समय किए जाने वाले मांगलिक कार्य, लज्जावनतमुखीम् = लज्जा से नीचे मुँह की हुई, दिष्ट्या = सौभाग्य से, धूमाकुलेन = धुएँ से व्याकुल, पावक = अग्नि, अद्यैव = आज ही।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – सुखशयितं = सुखेन सहितम् (सुप्सुपा समास), लज्जावनतमुखिम् = लज्जया अवनतमुखीम् (तत्पुरुष समास), धूमाकुलितदृष्टिः = धूमेन आकुलिता दृष्टिः यस्य तस्य (बहुव्रीहि समास)।

मूलपाठ –

प्रियंवदा– **(संस्कृतमाश्रित्य)**

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव।।4।।

अन्वयः – ब्रह्मन् दुष्यन्तेन आहितं तेजः भुवः भूतये दधानां तनयाम् अग्निगर्भां शमीमिव अवेहि।

अनुवाद– (संस्कृत का आश्रय लेकर)

हे ब्रह्मन्! अपनी पुत्री को संसार का कल्याण करने के लिए दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज को धारण करने वाली, अतः अग्नि को गर्भ में धारण करने वाली शमी के समान समझो।।4।।

व्याख्या–

कन्या को पतिगृह के लिए विदा के समय किए जाने वाले अनेक मंगलकारी कार्यों को प्रस्थानकौतुक कहते हैं। कण्व कहते हैं कि जैसे यज्ञ की अग्नि से धुआँ उठने के कारण यजमान की आँखों से दिखाई नहीं देता, परन्तु भाग्य से उसके द्वारा दी जाती हुई आहुति अग्नि में ही गिरती है, उसी प्रकार इस विवाह रूपी यज्ञ के यजमान कण्व के यज्ञ की आहुति रूप शकुन्तला उसके योग्य वर दुष्यन्त को, जो कि अग्नि का रूप है, प्राप्त हुई है तथा जैसे उत्तम शिष्य को दी गयी विद्या कल्याणकारी होती है परन्तु कुत्सित शिष्य को देने पर उसका शोचनीय परिणाम होता है इसी प्रकार योग्य वर को प्राप्त करके शकुन्तला भी अब शोक के योग्य नहीं है। कण्व ऋषि महान् तपस्वी थे। यज्ञशाला में जब उन्होंने प्रवेश किया तो आकाशवाणी ने उनको शकुन्तला की अवस्था की सूचना दी।

शब्दार्थ – तेजः = तेज या वीर्य, भूतये = पृथ्वी के, भुवः = कल्याण, अवेहि = जानो, शमीमिव = शमी के वृक्ष के समान।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवेहि = लोट् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन, अवेहि = अव+एहि (पूर्वरूप सन्धि)।

प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द जिसका लक्षण इस प्रकार है–

पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्वितचुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम्।।

अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु, छठाँ गुरु और दूसरे तथा तीसरे चरणों में सातवाँ वर्ण लघु होता है वहाँ अनुष्टुप् छन्द होता है।

मूलपाठ –

अनसूया – (प्रियंवदामाश्लिष्य) सखि, प्रियं मे। किन्त्वद्यैव शकुन्तला नीयते इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि। (सहि, पिअं मे। किंदु अज्ज एव्व सउन्दला णीअदि त्ति उक्कण्ठासाहारणं परितोसं अणुहोमि।)

प्रियंवदा – सखि, आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः। सा तपस्विनी निर्वृता भवतु। (सहि, वअं दाव उक्कण्ठं विणोदइस्सामो। सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु।)

अनसूया – तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गक एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसन्निहितां कुरु। यावदहमपि तस्यै गोरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि। (तेण हि एदस्सिं चूदसाहावलम्बिदे णारिएरसमुग्गए एतण्णिमित्तं एव्व कालान्तरक्खमा णिक्खित्तमए केसरमालिआ। ता इमं हत्थसण्णिहिदं करेहि। जाव अहंपि से गोरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआणि त्ति मंगलसमालंणणि विरएमि।)

प्रियंवदा – तथा क्रियताम्। (तह करीअदु।)

(अनसूया निष्क्रान्ता। प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति)

अनुवाद–

अनसूया– (प्रियंवदा का आलिंगन करके) सखि, मेरे लिए यह प्रिय बात है किन्तु आज ही शकुन्तला ले जाई जा रही है, अतः उत्कण्ठा से युक्त सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ।

प्रियंवदा– सखि, हम दोनों तो अपने को बहला लेंगे, वह बेचारी सुखी होवे।

अनसूया– तो इस आम के वृक्ष की शाखा पर लटके हुए नारियल के सम्पुट में मैंने इस निमित्त से ही दीर्घकाल तक न मुरझाने वाली मौलसिरी की माला रख दी थी। तो इसको हाथ में ले लो। जब तक मैं भी इसके लिए मृगरोचना को, तीर्थों की मिट्टी को और दूब के किसलयों को और इस प्रकार मंगल-सामग्री को तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा– वैसा ही करो।

(अनसूया निकल गई। प्रियंवदा फूल लेने का अभिनय करती है।)

शब्दार्थ – तपस्विनी = बेचारी, निर्वृता = सुखी हो, चूतशाखामवलम्बिते = आम की शाखा में लटके हुए, नारिकेलसमुद्गक = नारियल के डिब्बे में, गोरोचना = गोरोचन, समालम्भनानि = सामग्री।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – उत्कण्ठाम् = उत्कण्ठया दुःखेन साधारणं समानम् (तत्पुरुष समास), समुद्गक = सम+उद्+गम्+ड।

मूलपाठ –

(नेपथ्ये)

गौतमि, आदिश्यन्तां शाङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय।

प्रियंवदा– (कर्णं दत्त्वा) अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व। एते खलु हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दाय्यन्ते। (अणसूए, तुवर तुवर। एदे क्खु हत्थिणाउरगामिणो इसीओ सद्दावीअन्ति।)

(प्रविश्य समालम्भनहस्ता)

अनसूया – सखि, एहि। गच्छावः। (सहि, एहि। गच्छम्ह।)

(इति परिक्रामतः)

प्रियंवदा – (विलोक्य) एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतीष्टनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनाम्। (एसा सुज्जोदए एव सिहामज्जिदा पडिच्छिदणीवारहत्थाहिं सोत्थिवअणिकाहिं तावसीहिं अहिणन्दीअमाणा सउन्दला चिट्ठइ। उवसप्पम्ह णं।)

(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला)

तापसीनामन्यतमा – (शकुन्तलां प्रति) जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दं लभस्व। (जादे, भत्तुणो बहुमाणसूअअं महादेईसद्दं लहेहि।)

द्वितीया – वत्से, वीरप्रसविनी भव। (वच्छे, वीरप्पसविणी होहि।)

तृतीया – वत्से, भर्तुर्बहुमता भव। (वच्छे, भत्तुणो बहुमदा होहि।) **(इत्याशिषो दत्त्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः।)**

सख्यौ – (उपसृत्य) सखि, सुखमज्जनं ते भवतु। (सहि, सुहमज्जणं दे होदु।)

शकुन्तला – स्वागतं मे सख्योः। इतो निषीदतम्। (साअदं मे सहीणं। इदो णिसीदह।)

उभे – (मङ्गलपात्राण्यादाय। उपविश्य) हला, सज्जा भव। यावत्ते मङ्गलसमालम्भनं विरचयावः। (हला, सज्जा होहि। जाव दे मङ्गलसमालम्भणं विरएम।)

शकुन्तला – इदमपि बहु मन्तव्यम्। दुर्लभमिदानीं मे सखीमण्डनं भविष्यति। (इदं पि बहु मन्तव्वं। दुल्लहं दाणिं मे सहीमण्डणं भविस्सदि।) **(इति बाष्पं विसृजति।)**

उभे – सखि, उचितं न ते मङ्गलकाले रोदितुम्। (सहि, उइणं दे ण मङ्गलकाले रोइदुं।)

(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः।)

प्रियंवदा – आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विप्रकार्यते। (आहरणोइदं रूवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विप्पआरीअदि।)

(प्रविश्योपायनहस्तावृषिकुमारकौ)

उभौ – इदमलङ्करणम्। अलंक्रियतामत्रभवती।

(सर्वा विलोक्य विस्मिताः।)

गौतमी – वत्स नारद, कुत एतत्? (वच्छ णारअ, कुदो एदं।)

प्रथमः – तातकाश्यपप्रभावात्।

गौतमी – किं मानसी सिद्धिः? (किं माणसी सिद्धिः)

अनुवाद–

(नेपथ्य में)

गौतमी, शकुन्तला को ले जाने के लिए शाङ्गरव आदि को आदेश दो।

प्रियंवदा – (कान देकर) अनसूये, शीघ्रता करो। निश्चय से ये हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि पुकारे जा रहे हैं। (मांगलिक वस्तुएँ हाथ में लिए प्रविष्ट होकर)

अनसूया – सखि, आओ, चलें। (दोनों घूमती हैं।)

प्रियंवदा – (देखकर) सूर्योदय होते ही यह शकुन्तला चोटी से स्नान करके, नीवारों को हाथों में लिए हुए स्वस्तिवाचन पढ़ने वाली तपस्विनियों से अभिनन्दन की जाती हुई बैठी है। इसके समीप चलते हैं। (तदनन्तर जैसा कहा गया था, उस रूप में बैठी हुई शकुन्तला का प्रवेश)

तपस्विनियों में से एक – (शकुन्तला के प्रति) पुत्री, पति से बहुत अधिक आदर सूचक महादेवी पद को प्राप्त करो।

दूसरी – पुत्री, वीर पुत्र को उत्पन्न करने वाली बनो।

तीसरी – पुत्री, पति की बहुत अधिक आदरणीय और प्रिय बनो।

(इस प्रकार आशीर्वाद देकर गौतमी को छोड़कर सब निकल गयी)

सखियाँ – सखि, तुम्हारा स्नान सुख देने वाला हो।

शकुन्तला– मेरी सखियों का स्वागत है। इधर बैठो।

दोनों – (मंगल पात्रों को लेकर) हला, तैयार हो जाओ। हम तुम्हारा मंगलकारी प्रसाधन करती हैं।

शकुन्तला – मुझको इसको भी बहुत समझना चाहिए। अब सखियों द्वारा प्रसाधन कराना मेरे लिए दुर्लभ हो जाएगा। (रोती है।)

दोनों – सखि, इस मंगल के समय में रोना उचित नहीं है।

(आँसुओं को पोंछकर अलंकृत करने का नाट्य करती है।)

प्रियंवदा – आभूषणों के योग्य यह सौन्दर्य आश्रम में सुलभ प्रसाधनों द्वारा बिगाड़ा जा रहा है। (आभूषणों को हाथ में लिए हुए दो ऋषिकुमारों का प्रवेश)

दो ऋषिकुमार – ये अलंकार हैं। इन आदरणीया को अलंकृत करो।

(सब देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं)

गौतमी – पुत्र नारद, ये कहाँ से आये?

पहला – तात काश्यप के प्रभाव से।

गौतमी – क्या ये ऋषि के मानसिक संकल्प के फल है?

व्याख्या–

तीन तपस्विनियों ने शकुन्तला को आशीर्वाद दिया। उनके आशीर्वाद से स्पष्ट है कि विवाह होने पर नारी के लिए पति द्वारा आदर और प्रेम प्राप्त करना, श्रेष्ठ गुणों से युक्त सन्तान प्राप्त करना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। शकुन्तला अपनी दोनों सखियों से बहुत प्रेम करती है। दोनों सखियाँ उसका शृंगार करती हैं। पति के घर पहुँचकर सखियों से उसका वियोग हो जाएगा। यह विचार करके शकुन्तला की आँखों में आँसू आ जाते हैं। विदा के समय कन्या की आँखों में आँसू आना स्वभाविक है तथापि कवि जो यह कह रहा है कि मंगल समय में रोना उचित नहीं है इससे यह अभिव्यंजित होता है कि भविष्य में अमंगल होने की आशंका है। यह कथन भविष्य में होने वाले वियोग की सूचना देता है। ऋषिकुमार आभूषणों को लेकर प्रवेश करते हैं जिसको देखकर सभी आश्चर्यचकित हो जाते हैं

शब्दार्थ – शिखामज्जिता = सिर धोकर स्नान की हुई, प्रतीष्ट = गृहीत, वीरप्रसविनी = वीर पुत्र को जन्म देने वाली, विप्रकार्यते = बिगाड़ा जा रहा है, उपयान = भेंट, मङ्गकाले = मंगल समय में।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – शब्दाय्यन्ते = शब्दाय+णिच्+लट्, वीरप्रसविनी = वीर+प्र+सू+इनि, आभरण = आ+भृ+ल्युट्।

मूलपाठ –

द्वितीयः – न खलु। श्रूयताम्। तत्रभवता वयमाज्ञप्ताः शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति। तत इदानीम्–

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै–
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।5।।

अन्वयः – न केनचित् तरुणा इन्दुपाण्डु माङ्गल्यं क्षौमम् आविष्कृतम्। केनचित् चरणोपरागगसुभगः लाक्षारसः निष्ठ्यूतः। अन्येभ्यः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

अनुवाद–

द्वितीय– नहीं, सुनिए। पूजनीय ने हमें आज्ञा दी थी कि शकुन्तला के लिए वृक्षों से फूल चुनकर लाओ। तब–

हमको किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पैरों को रंगने के योग्य लाक्षारस प्रकट किया। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए, सुन्दर किसलयों की प्रतिस्पर्धा करने वाले, वनदेवता के करतलों से आभूषण दिए।।5।।

व्याख्या–

आश्रम में दुर्लभ अलंकारों को देखकर सबको आश्चर्य होता है कि आभूषण कहाँ से प्राप्त हुए। ये आभूषण काश्यप के प्रभाव से प्राप्त हुए थे। कण्व का तपोबल इतना अधिक था कि वे अपने मन के संकल्प से ही प्रत्येक वस्तु को प्राप्त कर लेते थे इसीलिए उन्होंने शिष्यों को आदेश दिया कि वनस्पतियों से कुसुम ले आओ। जहाँ शकुन्तला वनस्पतियों के प्रति अधिक स्नेहशील थी, वहाँ वृक्ष भी उससे अत्यधिक स्नेह करते थे। उसकी विदाई के समय उन्होंने सभी प्रकार की सामग्री उसको भेंट की।

शब्दार्थ – क्षौमम् = रेशमी वस्त्र, इन्दुपाण्डु = चन्द्रमा के समान श्वेत, आविष्कृतम् = प्रकट किया, निष्ठ्यूतः = निकाला, लाक्षारसः = महावर।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – माङ्गल्यम् = माङ्गल+यत्, चरणोपरागसुभगः = चरणयोः उपरागे सुभगः (तत्पुरुष समास), आपर्वभागम् = पर्वभागं यावत् आपर्वभागम् (अव्ययीभाव समास), आपर्वभागोत्थितैः = आपर्वभागम् उत्थितैः (सुप्सुपा समास)।

प्रस्तुत श्लोक में वाचकलुप्ता उपमा अलंकार है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है– **'सूर्याश्वैर्मसजस्ताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्'** अर्थात् जिस छन्द में मगण, सगण, जगण, दो तगण और एक गुरु वर्ण हो, बारहवें और सातवें वर्ण पर यति हो वहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द होता है।

मूलपाठ –

प्रियंवदा – (शकुन्तलां विलोक्य) हला, अनयाऽभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः। (हला, इमाए अब्भुववत्तीए सूइआ दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छि।) **(शकुन्तला व्रीडां रूपयति।)**

प्रथमः – गौतम, एह्येहि। अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

द्वितीयः – तथा। (इति निष्क्रान्तौ)

सख्यौ – अये, अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङ्गेषु ते आभरणविनियोगं कुर्वः। (अए, अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अंगेसु द आहरणविणिओअं करेम्ह।)

शकुन्तला – जाने वां नैपुणम्। (जाणे वो णेउणं।)

(उभे नाट्येनालंकुरुतः)

अनुवाद–

प्रियंवदा – (शकुन्तला को देखकर) सखी, इस अनुग्रह से सूचित होता है कि तुम पति के घर में राजलक्ष्मी का अनुभव करोगी। (शकुन्तला लज्जा का अभिनय करती है)

पहला – गौतम, आओ, आओ। स्नान करके निकले हुए काश्यप को वनस्पतियों की सेवा बता दें।

दूसरा – ठीक है। (दोनों का प्रस्थान)

दोनों सखियाँ – ओह, हम लोगों ने कभी आभूषण का उपयोग नहीं किया है चित्रकारी के कार्य से परिचित होने से हम लोग तेरे अंगों में आभूषण पहनाती हैं।

शकुन्तला – मैं तुम्हारी निपुणता जानती हूँ।

(दोनों शकुन्तला को आभूषण पहनाने का नाट्य करती हैं।)

व्याख्या–

प्रियंवदा के द्वारा कहे गए कथन कि सम्राट पति को प्राप्त करके व महादेवी का पद प्राप्त करके राजलक्ष्मी का अनुभव करोगी, पर शकुन्तला लज्जा करने लगती है, जो कि स्वाभाविक है। तापस कन्याओं ने कभी आभूषण तो पहने नहीं थे, अतः वे नहीं जानती थीं कि आभूषण कैसे पहने जाते हैं परन्तु वे चित्र की सहायता से आभूषण पहनाती हैं।

शब्दार्थ – अभ्युपत्त्या = वृक्षों के अनुग्रह द्वारा, अभिषेकोत्तीर्णाय = स्नान करके आये हुए, नैपुणम् = निपुणता को, वनस्पतिसेवाम् = वनस्पतियों की सेवा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अभ्युपपत्ति = अभि+उप+पद्+क्तिन्, अभिषेक = अभि+सिच्+घञ्, उत्तीर्ण = उद्+तॄ+क्त, नैपुणम् = निपुण+अण्।

मूलपाठ –

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः)

काश्यपः –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।6।।

(इति परिक्रामति)

अन्वयः – अद्य शकुन्तला यास्यति इति हृदयं उत्कण्ठया संस्पृष्टम्, कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषः, दर्शनं चिन्ताजडम्। अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् ईदृशम् इदं वैक्लव्यं, गृहिणः नवैः तनयाविश्लेषदुःखः कथं नु पीड्यन्ते।

अनुवाद –

(तदनन्तर स्नान करके आए हुए काश्यप का प्रवेश)

काश्यप– आज शकुन्तला विदा होगी, इसलिए मेरा हृदय दुःख से भरा है। आँसुओं के बहने को रोकने से गला भर आया है। दृष्टि चिन्ता के कारण निश्चेष्ट हो गई है। जंगल में रहने वाले मुझको प्रेम के कारण इस प्रकार का दुःख हो रहा है तो गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग से कितने अधिक दुःखित होते होंगे?।।6।।

(चारों ओर घूमते हैं।)

व्याख्या–

कन्या को पति-गृह के लिए विदा करते समय पिता के हृदय में जो पीड़ा होती है, उसका कालिदास ने सुन्दर चित्रण किया है। शकुन्तला अभी पति के घर के लिए विदा नहीं हुई है, तभी वियोग की कल्पनामात्र से इतना कष्ट है, तो जब वस्तुतः विदा हो जायेगी उस समय का कष्ट तो और भी व्याकुलता को उत्पन्न करेगा।

शब्दार्थ – संस्पृष्टम् = व्याप्त है, उत्कण्ठया = दुःख से, कलुष = मैला, दर्शनम् = दर्शनशक्ति, अरण्य = वन, गृहिणः = गृहस्थ, तनया = पुत्री।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संस्पृष्टम् = सम्+स्पृश्+क्त, स्तम्भितबाष्पवृतिः = स्तम्भिता बाष्पवृत्तिः (कर्मधारय समास), अरण्यौकसः = अरण्यम् ओकः गृहं यस्य (बहुव्रीहि समास)। प्रकृत श्लोक में अर्थापत्ति अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूलपाठ –

सख्यौ – हला शकुन्तले, अवसितमण्डनाऽसि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। (हला सउन्दले, अवसिदमण्डणासि। परिधेहि संपदं खोमजुअलं।) **(शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते)**

गौतमी – जाते, एष ते आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः। आचारं तावत् प्रतिपद्यस्व। (जादे, एसो दे आणन्दपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सजन्तो विअ गुरू उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्जस्स।)

शकुन्तला – (सव्रीडम्) तात, वन्दे। (ताद, वन्दामि।)

अनुवाद –

दोनों सखियाँ – सखी शकुन्तला, तुम्हारा शृंगार पूरा हो गया है। अब रेशमी वस्त्रों को पहन लो। (शकुन्तला उठकर पहनती है)

गौतमी – पुत्री, आनन्द के आँसूओं को बहाने वाली आँखों से तुम्हारा मानो आलिंगन करते हुए ये तुम्हारे पिता उपस्थित हुए हैं। इनके प्रति शिष्टाचार का पालन करो।

शकुन्तला – (लज्जा से) पिता, मैं प्रणाम करती हूँ।

शब्दार्थ – अवसितमण्डना = तुम्हारा शृंगार पूर्ण हो गया है, क्षौमम् = रेशमी, परिधत्स्व = पहन लो, चक्षुष = नेत्रों से, आचार = शिष्टाचार।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अवसितमण्डना = अवसितं समाप्तं मण्डनं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), अवसित = अव+सो+क्त, आनन्दपरिवाहिणा = आनन्द+परि+वाहि+णिनि+तृतीया।

मूलपाठ –

काश्यपः – वत्से, –

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि।।7।।

गौतमी – भगवन्, वरः खल्वेषः। नाशीः। (भअवं, वरो क्खु एसो। ण आसिसो।)

काश्यपः – वत्से, इतः सद्योहुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

अन्वयः – शर्मिष्ठा ययातेः इव भर्तुः र्बहुमता भव। सा पूरुम इव त्वम् अपि सम्राजं सुतम् अवाप्नुहि।

अनुवाद –

काश्यप – पुत्री,

जिस प्रकार शर्मिष्ठा ययाति को बहुत अधिक प्रिय और आदरणीय थी, उसी प्रकार तुम भी पति की बहुत अधिक प्रिय और आदरणीय बनो। जिस प्रकार उस शर्मिष्ठा ने पुरु नामक सम्राट् पुत्र को प्राप्त किया था, उसी प्रकार तुम भी सम्राट् पुत्र को प्राप्त करो।।7।।

गौतमी – भगवन्, यह तो निश्चय से वर है, आशीर्वाद नहीं।

काश्यप – पुत्री, इस ओर से तत्काल आहुति दी गयी अग्नियों की परिक्रमा करो। (सब घूमते हैं।)

शब्दार्थ – भर्तुः = पति की, वत्से = पुत्री, बहुमता = अत्यधिक प्रिय, सुतम् = पुत्र, अवाप्नुहि = प्राप्त करो, प्रदक्षिणीकुरुष्व = प्रदक्षिणा करो।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार है। यहाँ अनुष्टुप् छन्द है।

मूलपाठ –

काश्यपः – (ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते।) वत्से,

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै–
र्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु।।8।।

प्रतिष्ठस्वेदानीम्। (सदृष्टिक्षेपम्) क्व ते शाङ्र्गरवमिश्राः?

अन्वयः – अमी समिद्वन्तः वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः वैतानाः वह्नयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपघ्नन्तः त्वां पावयन्तु।

अनुवाद–

काश्यप– (ऋग्वेद के छन्द से आशीर्वाद देते हैं।)

वेदी के चारों ओर स्थान को बनाने वाली, समिधाओं से युक्त प्रान्त भागों में बिछाये गये दर्भों से युक्त, हवियों की सुगन्धियों से पापों-कष्टों का विनाश करने वाली ये यज्ञीय अग्नियाँ तुमको पवित्र करें।।8।।

अब प्रस्थान करो। (दृष्टि डालकर) वे शार्ङ्गरव आदि कहाँ हैं?

शब्दार्थ – क्लृप्तधिष्ण्याः = जिनको यथास्थान स्थापित किया गया है, प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः = जिनके आस-पास कुशा बिछी हुई है, वैतानाः = यज्ञ से सम्बन्धित, वितान = यक्ष, अपघ्नन्तः = नष्ट करती हुई।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – क्लृप्तधिष्ण्याः = क्लृप्तानि घिष्ण्यानि येषां ते (बहुव्रीहि समास), प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः = प्रान्तेषु संस्तीर्णाः दर्भाः येषां ते (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में परिकर अलंकार है। यहाँ त्रिष्टुप् छन्द है। यह वैदिक छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में ग्यारह वर्ण होते हैं।

मूलपाठ – (प्रविश्य)

शिष्यः – भगवन्, इमे स्मः।

काश्यपः – भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

शाङ्र्गरवः – इत इतो भवती।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

अनुवाद– (प्रवेश करके)

शिष्य – भगवन्, ये हैं।

काश्यप– अपनी बहन को मार्ग बताओ।

शाङ्र्गरव– आप इधर से आइये। (सब घूमते हैं)

मूलपाठ –

काश्यपः – भो भोः सन्निहितास्तपोवनतरवः–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।9।।

अन्वयः – युष्मासु अपीतेषु या प्रथमं जलं पातुं न व्यवस्यति। भवतां स्नेहेन या प्रियमण्डना अपि पल्लवम् ना आदत्ते। वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्या उत्सवः भवति। सा इयं शकुन्तला पतिगृहं याति, सर्वैः अनुज्ञायताम्।

अनुवाद–

काश्यप – हे समीप स्थित आश्रम के वृक्षों, जो शकुन्तला तुम्हारे जल न पीने पर स्वयं पहले जल पीने का उद्योग नहीं करती, अलंकार प्रिय होने पर भी स्नेह के कारण आपके पल्लव को नहीं तोड़ती, आपके प्रथम पुष्पों की उत्पत्ति के समय जो उत्सव मनाया करती है, वह यह शकुन्तला पति के घर जा रही है, आप सब अनुमति दीजिए।।9।।

व्याख्या–

'पातुं न प्रथमं .....' नामक श्लोक में शकुन्तला का आश्रम के वृक्षों के प्रति वात्सल्य भाव व्यंजित किया गया है। वह शकुन्तला स्वयं जल पीने से पूर्व वृक्षों को सींचती थी, उसके पल्लवों को कभी नहीं तोड़ती थी और उनमें जब पहली बार फूल खिलते थे तो उत्सव मनाया करती थी। वृक्षों को इस प्रकार स्नेह करने वाली शकुन्तला अब आश्रम से जा रही है, तो उनसे विदा माँगना उचित ही है।

शब्दार्थ – प्रियमण्डना = जिसको अलंकार पसन्द हैं, भवताम् = आप लोगों के प्रति, स्नेहेन = प्रेम के कारण, कुसुमप्रसूतिसमये = पुष्पों के निकलने के समय, याति= जा रही है, अनुज्ञायताम् = स्वीकृति से।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – प्रियमण्डना = प्रियं मण्डनं यस्याः सा (बहुव्रीहि समास), कुसमप्रसूतिसमये = कुसुमानां प्रसूतेः समये (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति और काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

मूलपाठ –

(कोकिलरवं सूचयित्वा)

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्।।10।।

अन्वयः – इयं शकुन्तला वनवासबन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना, यथा कलं परभृतविरुतम् एभिः ईदृशम् प्रतिवचनीकृतम्।

अनुवाद –

(कोयल की ध्वनि की सूचना सुनकर)

वनवास के बन्धु इन वृक्षों ने शकुन्तला को जाने की अनुमति दे दी क्योंकि इन्होंने इस प्रकार के अव्यक्त मधुर कोकिल के कूजन के रूप में अपना प्रत्युत्तर दे दिया है।।10।।

शब्दार्थ – अनुमतगमना = जाने की अनुमति दे दी है, वनवासबन्धुभिः = वन के साथ, परभृत = कोयल, विरुतम् = शब्द।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अनुमत = अनु+मन्+क्त, वनवासबन्धुभिः = वनवासस्य बन्धुभिः (तत्पुरुष समास)।

प्रस्तुत श्लोक में परिणाम अलंकार है। यहाँ अपरवक्त्र छन्द है जिसका लक्षण इस प्रकार है – '**अयुजि ननरला गुरुः समे, तदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ**' अर्थात् अपरवक्त्र छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में 11 वर्ण होते हैं जिसमें 2 नगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु वर्ण होते हैं तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में 12 वर्ण होते हैं जिनमें एक नगण, दो जगण और एक रगण होता है।

मूलपाठ –

(आकाशे)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि–
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।11।।

अन्वयः – कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः, छायाद्रुमैः नियमितार्कमयूखतापः, अस्याः पन्थाः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवनः च शिवः च भूयात्।

अनुवाद–

(आकाश)

इस शकुन्तला का मार्ग जो कि बीच-बीच में कमलिनियों से हरे-भरे जलाशयों से रमणीय है, जिसमें सूर्य की किरणों की धूप को छायादार वृक्षों से रोक दिया गया है और जो कमलों के पराग के समान कोमल धूलि वाला है, शान्त एवं अनुकूल पवन वाला और कल्याणकारी होवे।।11।।

शब्दार्थ – कमलिनीहरितैः = कमलिनियों से हरे-भरे तालाब हों, छायाद्रुमैः = छाया वाले वृक्षों से, शिवः = मंगलकारी, पन्थाः = मार्ग।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – नियमितार्कमयूखतापः = नियमितः अर्कस्य मयूखानां तापः यस्मिन् स (बहुव्रीहि समास), शान्तानुकूलपवनः = शान्तः अनुकूलः पवनः यस्मिन् स (बहुव्रीहि समास)।

प्रस्तुत श्लोक में तुल्ययोगिता, परिकर, अन्योन्य और काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द है।

बोध प्रश्न

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

i) कण्व ऋषि ..... तीर्थ गए थे।

ii) ययाति की पत्नी ..... थी।

iii) क्षमायाचना के लिए दुर्वासा के पास ..... जाती है।

iv) शाकुन्तलम् में शकुन्तला को ..... ने शाप दिया।

2) निम्नलिखित में सत्य तथा असत्य कथन का चयन कीजिए –

i) दुष्यन्त तथा शकुन्तला का विवाह गान्धर्व विधि से हुआ था –

ii) कण्व को शकुन्तला के विवाह की सूचना अनसूया ने दी –

iii) अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला की सखियाँ थीं –

iv) शाप की घटना 'शाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में है –

v) शकुन्तला के लिए आभूषण बाजार से आते हैं –

3) निम्नलिखित विकल्पों में सही विकल्प पर सही का निशान लगाइए –

i) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 'प्रक्रतिवक्रः सः' किसके लिए प्रयुक्त किया गया है–

(क) कण्व के लिए (ख) दुष्यन्त के लिए

(ग) दुर्वासा के लिए (घ) मारीच के लिए

ii) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 'अग्निगर्भा शमीमिव' कौन है–

(क) गौतमी (ख) कण्व

(ग) शकुन्तला (घ) प्रियंवदा

iii)अरण्यौकसः पद का अर्थ है–

(क) वनवासी (ख) गृहस्थ

(ग) ब्रह्मचारी (घ) तपस्वी

iv)तपस्वी होकर भी लौकिक व्यवहारों के ज्ञाता हैं–

(क) विश्वामित्र (ख) दुर्वासा

(ग) शाङ्र्गरव (घ) कण्व

v) 'ओषधीनां पति' है–

(क) सूर्य (ख) चन्द्रमा

(ग)यम (घ) मंगल

अभ्यास प्रश्न

1) 'विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा' श्लोक की व्याख्या कीजिए।

2) 'यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयम्' श्लोक का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए।

14.3 सारांश

चौथे अंक के विष्कम्भक में पुष्पों का चयन करती अनसूया एवं प्रियंवदा के वार्तालाप से विदित होता है कि दुष्यन्त का शकुन्तला से गान्धर्व विधि से विवाह हो गया था। वह शकुन्तला को शीघ्र बुलाने का आश्वासन देकर हस्तिनापुर चला गया। शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न कुटी में बैठी है। इसी समय दुर्वासा ऋषि का स्वर सुनाई देता है परन्तु शकुन्तला उसको सुन नहीं पाती। तब दुर्वासा ऋषि उसको इस प्रकार शाप देकर चले जाते हैं– 'जिसका स्मरण करती हुई तू मुझ तपस्वी की ओर ध्यान नहीं दे रही, वह तुझको भूल जाएगा और स्मरण दिलाने पर भी स्मरण नहीं करेगा।'

अनसूया के कहने पर प्रियंवदा ऋषि को मनाने जाती है। किसी पहचान का आभूषण दिखाने पर शाप का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। प्रियंवदा और अनसूया दुर्वासा के शाप की बात न शकुन्तला को बताती हैं, न अन्य किसी को। वे समझती हैं कि राजा की अंगूठी शकुन्तला के पास है अतः राजा शकुन्तला को पहचान लेगा और शाप का कोई प्रभाव नहीं हो सकेगा। यहाँ पर विष्कम्भक समाप्त होता है।

प्रवास से लौट कर आये कण्व को आकाशवाणी द्वारा विदित होता है कि शकुन्तला का दुष्यन्त से विवाह हो गया है और वह गर्भवती है। वे शकुन्तला को पतिगृह भेजने का प्रबन्ध करते हैं। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाता है और उसे बुलाने के लिए किसी व्यक्ति को नहीं भेजता। शकुन्तला की विदा की तैयारियाँ होती हैं। इस अवसर पर वन्य-वनस्पतियाँ अपने उपहार शकुन्तला के लिए अर्पित करती हैं। वनवृक्षों द्वारा आभूषण और रेशमादि वस्त्र प्राप्त होते हैं। शकुन्तला अपनी सखियों, वन मृगों आदि से विदा लेती हैं

14.4 शब्दावली

गुणविरोधिनः	–	गुणों से विरोध करने वाले
अनायासेन	–	बिना किसी प्रयास के
अप्रियमेव	–	अशुभ
पिनद्धम्	–	पहनाया
वेला	–	समय
अबला	–	स्त्री
विसृजति	–	भेजना
समालम्भनानि	–	सामग्री
लाक्षारसः	–	महावर
तनया	–	पुत्री
अवाप्नुहि	–	प्राप्त करो

14.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार डॉ. कृष्ण कुमार, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

3) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल विजय कुमार, इलाहाबाद।

4) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली।

5) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार शिवराज, पेंविन बुक्स लिमिटेड।

6) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, व्याख्याकार आचार्य धुरंधर शास्त्री, भारतीय विद्या संस्थान।

7) कालिदास ग्रन्थावली, व्याख्याकार रामतेज शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, आरियंटल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।

14.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) सोमतीर्थ (ii) शर्मिष्ठा (iii) प्रियंवदा (iv) दुर्वासा ऋषि
2. (i) सत्य (ii) असत्य (iii) सत्य (iv) सत्य (v) असत्य
3. (i) (ग) दुर्वासा के लिए (ii) (ग) शकुन्तला (iii) (क) वनवासी (iv) (घ) कण्व (v) (ख) चन्द्रमा

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।